इतिहास शिक्षण - विकल्पों की तलाश

सी.एन. सुब्रमण्यम, रश्मि पालीवाल

जिस समाज में एकाधिक संक्रमण (साथ-साथ) चल रहे हों, उसमें ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की एक समृद्ध व बारीक समझ विकसित होती है। औपचारिक इतिहास शिक्षण या तो इस समझ के शमन का प्रयास करता है या इस पर लफ्फाज़ी का मुलम्मा चढ़ाने का काम करता है। आलोचनात्मक इतिहास शिक्षण कहीं अधिक सार्थक हो सकता है, बशर्ते कि उसमें ऐतिहासिक समझ के इस स्रोत का उपयोग किया जाए और उसमें पद्धति की गहनता का समावेश किया जाए।

जब यह लेख लिखा जा रहा था, तब मध्य प्रदेश सरकार एकलव्य के समाज विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम को बन्द करने की घोषणा कर चुकी थी। इसका कोई कारण भी नहीं बताया गया है। यह कार्यक्रम म.प्र. के दो ज़िलों के आठ सरकारी स्कूलों में चल रहा था और इसे पूरे ज़िलों में फैलाने का प्रस्ताव दो साल से सरकार के पास लंबित था। उस समय सरकार का मत था कि 'बाहरी' मूल्यांकन के बगैर इसे नहीं फैलाया जा सकता मगर बन्द करते समय ऐसे किसी मूल्यांकन की ज़रूरत नहीं समझी गई।

यह मनमानी कार्यवाही कई सवालों को जन्म देती है लेकिन पहले हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि बच्चों की इतिहास की समझ क्या है और एक औपचारिक स्कूली पाठ्यक्रम के ज़रिए इस समझ के साथ किस तरह का संवाद बनाया जा सकता है।

कोसाम्बी ने इतिहासकारों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया था कि कबीलों से जाति और राज्य आधारित समाज में संक्रमण भारतीय समाज का एक स्थाई पक्ष है और यदि कोई इतिहासकार ज़हमत उठाए तो उसे सामाजिक विकास के विभिन्न सोपान आसपास नज़र आएंगे। एकाधिक संक्रमण और निरंतरता की जिस समस्या की ओर उन्होंने इशारा किया था, उसका भारतीय इतिहास के ग्रंथों पर

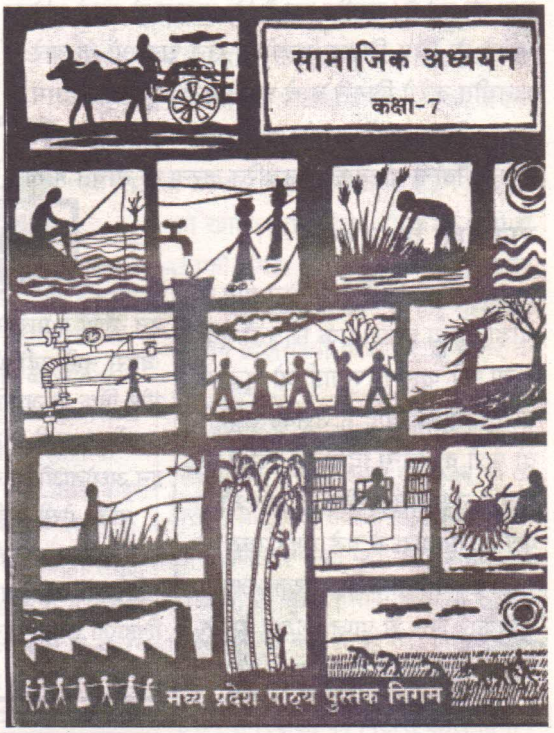

बहुत प्रमुख प्रभाव रहा है।

जिस समाज में एकाधिक संक्रमण (साथ-साथ) चल रहे हों, उसमें ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की एक समृद्ध व बारीक समझ विकसित होती है। औपचारिक इतिहास शिक्षण या तो इस समझ के शमन का प्रयास करता है या इस पर लफ्फाज़ी का मुलम्मा चढ़ाने का काम करता है। आलोचनात्मक इतिहास शिक्षण कहीं अधिक सार्थक हो सकता है, बशर्ते कि उसमें ऐतिहासिक समझ के इस स्रोत का उपयोग किया जाए और उसमें पद्धति की गहनता का समावेश किया जाए। इस तरह की कुछ संभावनाओं को उभारने के लिए हम स्कूली शिक्षकों व बच्चों के साथ अपनी चर्चाओं के उदाहरणों का सहारा लेंगे।

एकलव्य की कक्षा 7 की पुस्तक के एक पाठ में यह

चर्चा की गई है कि आम संवत (ईस्वीं) की पहली सहस्राब्दि में देश के विभिन्न इलाकों में राजवंश कैसे उभरे थे। 'राजवंशों का बनना' नामक इस अध्याय में किसी एक राजवंश की बात नहीं की गई है, वरन आम प्रक्रिया की बात की गई है। उम्मीद यह है कि अध्याय से पहले भूमिका बांधने के लिए शिक्षक बच्चों से उन राजाओं के बारे में बातचीत करेंगे जिनसे बच्चे परिचित हैं। एक बार हममें से एक व्यक्ति कक्षा में था और चर्चा अत्यंत जीवंत हो गई थी। हमारी मैदानी नोटबुक से उद्धरित करना ही उचित होगा।

राजवंशों का बनना

छात्रों को चर्चा में शामिल होने में थोड़ा समय लगा। एक छात्र ने एक राजा की कहानी सुनाई जो युद्ध में मारा गया था। बाद में उसकी रानी ने दो पुत्रों को जन्म दिया था। रानी के भाई ने उससे गद्दी छीन ली और दोनों पुत्र अज्ञातवास में बड़े हुए। अन्त में उन्होंने अपने मामा को मारकर अपना अधिकार फिर से प्राप्त किया। इसके बाद चर्चा रामायण के राजाओं, दशरथ व उनकी पत्नी कौशल्या तथा रावण व उनकी पत्नी मंदोदरी की ओर मुड़ गई। अचरज की बात थी कि राम तो महज़ एक राजकुमार थे। बच्चे यह याद नहीं कर पाए कि महाभारत में राजा कौन था - कृष्ण या अर्जुन।

इन बच्चों ने प्रारंभिक राज्यों से सम्बंधित बहसें नहीं पढ़ी थीं। वे फॉक्स, गॉर्डन और विंक से अनभिज्ञ थे। मगर वे बहसें उन्हें अजनबी न लगतीं और वे शायद इन अध्येताओं के साथ सार्थक चर्चा कर पाते। ऐसी कई संस्थाएं आज भी विकसित हो रही हैं और बच्चे इन बदलावों को नज़दीक से देख रहे हैं। लिहाज़ा उनके पास इनकी गहरी समझ है।

फिर मैं अध्याय की मुख्य विषयवस्तु की ओर बढ़ा, "राजा कैसे बनते हैं?"

"लूटमार करके, लोगों से ज़बर्दस्ती पैसा लेकर, रंगदारी दिखाकर।" बच्चों का बेहिचक जवाब था।

यह तो काफी कठोर निरूपण था। तो राजा बनने के इच्छुक व्यक्तियों को यह सब क्यों करना पड़ता था?

"ताकि लोग उनसे डरें, लोगों में खौफ पैदा करके।"

क्या कोई व्यक्ति ईमानदारी से और शांतिपूर्ण तरीके से राजा नहीं बन सकता था?

"कोई आपकी बात क्यों सुनेगा? ईमानदारी से कमाते रहेंगे तो बुड्ढे हो जाएंगे - कुछ नहीं होगा।"

एक अन्य बच्चे ने दूसरी सम्भावना पर विचार किया, "राजा बनने का इच्छुक व्यक्ति दो राजाओं को आपस में लड़वा सकता है और लूट में विजयी राजा से हिस्सा लेकर खुद राजा बन सकता है।" अन्य बच्चों ने इसका विरोध किया, "विजयी राजा माल क्यों बांटेगा, वह तो उसे लात मारकर भगा देगा।"

फिर वे एक और सम्भावना की ओर मुड़े, "खानदानी राजा होते हैं।" उदाहरण पूछने पर उन्होंने महाकाव्यों के कुछ राजाओं के उदाहरण दिए।

हम फिर से मूल विषयवस्तु पर लौटे, "क्या खानदानी राजा भी लूटमार करते हैं?" इसका ज़ोरदार जवाब आया, "नहीं। वे तो प्रजा की भलाई चाहते थे, वे क्यों लूटमार करते? उल्टे वे प्रजा में गरीबों के बीच अपना धन बांटते थे।"

यह विरोधाभासी नहीं लगता क्या? वही व्यक्ति राजा बनने से पहले लूटमार करता है और राजा बनने के बाद वही भला हो जाता है। बच्चों को इसमें कोई विरोधाभास नहीं दिखता - उन्हें तो यह एकदम स्वाभाविक लगता है, "अब उनके पास धन है और चैन है। अब उनका काम लोगों की भलाई करना है।"

मगर उनके पास अपनी प्रजा के बीच बांटने के लिए धन कहां से आता है? इस सवाल पर थोड़ी गफलत फैल जाती है। कक्षा में अलग-अलग बच्चे अलग-अलग अटकलें लगाते हैं - (1) राजा अन्य राजाओं को हराकर उनकी सम्पत्ति ले लेगा, यह सबसे सम्भव व्याख्या लगती है, (2) एक बच्चा धीरे से सुझाता है कि राजा अपनी प्रजा से लगान लेता होगा। कक्षा में कई बच्चे इसका ज़ोरदार विरोध करते हैं, "अपने ही लोगों से थोड़ी लगान इकट्ठा करेगा। गरीबों से क्या लगान ले सकता है? ऐसा तो सिर्फ दुष्ट राजा करते हैं।" (3) "उसकी अपनी खेती होगी। बटाई पर देता

होगा या उसके सैनिक उसमें काम करते होंगे।"

और इस तरह चर्चा चलती गई। इन बच्चों ने प्रारंभिक राज्यों से सम्बंधित बहसें नहीं पढ़ी थीं। वे फॉक्स, गॉर्डन और विंक से अनभिज्ञ थे। मगर वे बहसें उन्हें अजनबी न लगतीं और वे शायद इन अध्येताओं के साथ सार्थक चर्चा कर पाते। यह उन कई सारी चर्चाओं में से एक है जो हमने व कार्यक्रम से जुड़े शिक्षकों ने बच्चों के साथ धर्म, जाति, साम्राज्यवादी नीतियों और किसानों व आदिवासियों के प्रति ब्रिटिश नीतियों के विकास को लेकर की थीं।

ये सारी संस्थाएं आज भी विकसित हो रही हैं और बच्चे इन बदलावों को नज़दीक से देख रहे हैं। लिहाज़ा उनके पास इनकी गहरी समझ है। बच्चे हमारे अध्यायों के दायरों से भी कहीं आगे गए और कई पेचीदगियों में घुसे।

यह सही है कि बच्चे स्वयं किसी प्रारंभिक राज्य निर्माण की प्रक्रिया को नहीं देख रहे हैं। फिर भी उन्होंने महाकाव्यों के माध्यम से चली आ रही लोक समझ का भरपूर सहारा लिया और साथ ही वर्तमान में नए-नए शक्ति केन्द्रों को उभरते देखने के अपने अनुभव का भी उपयोग किया।

नवाचार की बदौलत साधारण स्कूली शिक्षक और छात्र उन इतिहासों से संवाद बना पाए। सामाजिक प्रक्रियाओं की उनकी अपनी समझ व एहसास थे जिनके रूबरू वे इतिहासकारों के सिद्धांतों को तोल पाए। कभी-कभी वे इन सिद्धांतों को खारिज कर देते, तो कभी-कभी ये सिद्धांत उनकी समझ को समृद्ध करते थे। मगर उन्हें यह कभी न लगता कि ये विषय उनकी दिलचस्पी के दायरे से बाहर के हैं।

इतिहास का इतिहास

जब 18 वर्ष पहले हमने इतिहास की नई पाठ्य पुस्तकें तैयार करने का काम शुरू किया था, उस समय हम इन सम्भावनाओं से अनिभज्ञ थे। हमारा विचार था कि इतिहास इतिहासकारों द्वारा लिखा जाना चाहिए और उसे 'लोकप्रियकरण' के ज़रिए आम लोगों तक पहुंचाया जाना चाहिए। लोकप्रियकरण का मतलब है कि सारा शब्दाडम्बर हटा दें और सारी अवधारणाओं को मूर्त बिम्बों में तब्दील कर दें ताकि इतिहासकारों की विशिष्ट शब्दावली से नावाकिफ लोग भी इसे समझ सकें। दूसरा नवाचार भी शिक्षा पद्धति के सरोकारों से ही उभरा था - वह था कि कुछ सोचे-समझे सवालों के ज़रिए कक्षा में शिक्षक व छात्रों के बीच चर्चा का प्रावधान रखा जाए।

इन दो नवाचारों की बदौलत साधारण स्कूल शिक्षक और छात्र उन इतिहासों से संवाद बना पाए और इस संवाद में उनके अनुभवों व एहसासों का उपयोग अनिवार्य रूप से हो पाया। सामाजिक प्रक्रियाओं की उनकी अपनी समझ व एहसास थे जिनके रूबरू वे इतिहासकारों के सिद्धांतों को तोल पाए। कभी-कभी वे इन सिद्धांतों को खारिज कर देते, तो कभी-कभी ये उनकी समझ को समृद्ध करते थे। मगर उन्हें यह कभी न लगता कि ये विषय उनकी दिलचस्पी के दायरे से बाहर के हैं।

इस तरह के संवाद का एक अनिवार्य पक्ष पद्धति सम्बंधी बहसें थीं। जब भी दो परस्पर प्रतिस्पर्धी संकल्पनाएं सामने आतीं, तो प्रमाणीकरण का मुद्दा उभर आता था। शिक्षकों के साथ हमारी चर्चाओं से यह साफ तौर पर स्थापित हो गया कि इतिहास के 'स्रोत' इस प्रक्रिया के केंद्र में है। इसने समस्याओं का पिटारा खोल दिया : स्रोत से क्या आशय है, किसी स्रोत की व्याख्या कैसे की जाती है, और एक ही स्रोत की परस्पर विरोधी व्याख्याओं के संदर्भ में क्या किया जाता है। हमने माना कि इनमें से कई मुद्दों से छात्रों को भी परिचित कराया जाना चाहिए और कक्षा 7 की हमारी किताब में स्रोतों व उनकी व्याख्या को काफी स्थान दिया गया है। इस समझ का एक गौण नतीजा यह निकला कि शिरीन रत्नागर ने 'भारतीय इतिहास के स्रोत' नामक एक किताब शिक्षकों के लिए तैयार की।

अनजाने में ही हम 'इतिहास के लोकप्रियकरण' से 'ऐतिहासिक ज्ञान के प्रजातांत्रिक विकास' की ओर बढ़ रहे थे। इस संकल्पना का साकार रूप यह होगा कि स्थानीय इतिहास की खोजबीन की जाए और उसे इतिहास लेखन की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। एकलव्य दो तरह के हस्तक्षेपों

के माध्यम से इस काम में कदम रख रहा था। पहला, म.प्र. में अनुसंधान कार्य में जुटे कॉलेज शिक्षकों से संवाद करना ताकि उनके और महानगरीय इतिहासकारों के बीच कड़ी जोड़ी जा सके। इसके अंतर्गत उज्जैन से प्रकाशित एक शोध पत्रिका के साथ भी प्रयास किए गए।

दूसरा, एकलव्य ने ज़िला स्तर पर बुद्धिजीवियों और स्कूली शिक्षकों को साथ लाने के प्रयास किए ताकि स्थानीय इतिहास, भूगोल और विकास के मुद्दों पर सामग्री तैयार की जा सके। परिप्रेक्ष्य यह था कि अन्ततः इन सारे प्रयासों को जोड़कर इतिहास शिक्षण के मायनों को पुनः परिभाषित किया जाए। यह दुःखद तथ्य है कि म.प्र. सरकार ने इस मौके पर प्रायोगिक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम को बन्द करने का निर्णय लिया। अब चुनौती यह है कि इस प्रक्रिया को औपचारिक स्कूल पाठ्यक्रम के दायरे से बाहर जारी रखा जाए।

यदि अतीत को पुनर्निर्मित करने के विभिन्न तरीकों के बीच संवाद व अंतर्क्रिया ही इतिहास शिक्षण है, तो अनिवार्य रूप से इसमें गहरे सामाजिक सरोकार जुड़े होंगे।

इतिहास शिक्षण के सरोकार

यदि अतीत को पुनर्निर्मित करने के विभिन्न तरीकों के बीच संवाद व अंतर्क्रिया ही इतिहास शिक्षण है, तो अनिवार्य रूप से इसमें गहरे सामाजिक सरोकार जुड़े होंगे। यहां हम शिकारी संग्रहकर्ताओं के संदर्भ में हुई चर्चाओं का हवाला देना चाहेंगे। यह एक पहेली ही है कि मुख्य धारा की अधिकांश इतिहास पाठ्य पुस्तकों में शिकारी संग्रहकर्ताओं के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कहा जाता - पाषाण युग से सम्बंधित अध्यायों में मात्र औज़ारों के प्रकार व कुछ सामान्य बातें कह दी जाती हैं।

इसी प्रकार से, हालांकि जनजातीय जीवन समूची दुनिया में और हमारे देश में एक महत्वपूर्ण जीवन शैली है किन्तु पाठ्य पुस्तकें इसके बारे में बहुत कम कहती हैं और पूरा ध्यान राज्य आधारित समाजों पर देती हैं। प्रागैतिहासिक समाजों व प्रारंभिक सामाजिक संरचनाओं की इस उपेक्षा के राजनैतिक निहितार्थ भी हैं। इससे सामान्य स्कूल शिक्षक के मन में यह धारणा पुख्ता होती है कि शिकारी-संग्रहकर्ता और आदिवासी 'कमतर इंसान' हैं - अज्ञानी, असभ्य, असामाजिक, उच्छृंखल। 'आदिम इंसानों' के 'दुष्ट, निर्मम व संक्षिप्त' जीवन की छवि को आधुनिक आदिवासियों तथा धीरे-धीरे समस्त दलित तबकों पर लागू कर दिया जाता है।

हमने तय किया कि अपने शिक्षक प्रशिक्षण में हम इन्हीं मुद्दों को उठाएंगे। आम प्रशिक्षण सत्र में होता यह था कि हम शिक्षकों से अनुरोध करते थे कि प्रागैतिहासिक लोगों के बारे में वे अपनी समझ व मत सामने रखें। तब वही रूढ़ छवि प्रस्तुत होती थी और वे आज के आदिवासी लोगों के उदाहरण देकर अपनी बात समझाते थे। इसके बाद दो दिन की गहन चर्चा में पत्थर के विभिन्न औज़ार व चित्र देखे जाते, जनजातीय सामग्री पढ़ी जाती और 'मूल समृद्ध समाज' सम्बंधी मार्शल साहलिन का निबंध पढ़ा जाता। इस सबसे शिक्षक इतना तो स्वीकार करते थे कि उन्हें प्रागैतिहासिक लोगों और वर्तमान आदिवासी समाजों के बारे में अपने मत संशोधित करने की ज़रूरत है। कुछ शिक्षक आदिवासी लोगों व शिकारी-संग्रहकर्ताओं की मूल्य प्रणाली, ज्ञान प्रणाली व सौंदर्य बोध के महत्व को भी स्वीकार करने लगते थे।

इस तरह के पुनरीक्षण से राजनैतिक समझ के उस ढांचे को भी बदलने में मदद मिलती है जिसके अधीन शिक्षक काम करते हैं। एक उदाहरण भारतीय इतिहास के दूसरे छोर से भी दिया जा सकता है। 'आधुनिक भारत' पर एकलव्य द्वारा तैयार अध्याय में औपनिवेशिक काल में विभिन्न तबकों के अनुभव व उनकी प्रतिक्रियाओं को शामिल किया गया है - महिलाएं, कारीगर, आदिवासी, मध्यम वर्ग, औद्योगिक मज़दूर, उद्योगपति वगैरह।

उल्लेखनीय है कि उपनिवेश और स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ी स्थानीय स्मृतियों में इन बिम्बों की प्रचुरता है। मगर आम पाठ्य पुस्तकों में इन बिम्बों को कोई स्थान न देकर एक एकसार ब्रिटिश विरोधी 'राष्ट्रीय आंदोलन' पर ही ज़ोर दिया गया है, जिसकी परिणति उपनिवेश-पश्चात् राज्य के गठन में हो जाती है।

मोटे तौर पर यह आधुनिक राज्य को वैधता प्रदान

करता है और उसे स्वतंत्रता आंदोलन से हासिल गरिमा प्रदान करता है। जब शिक्षक महिलाओं व आदिवासियों से सम्बंधित अध्याय पढ़ते हैं, तो व्यथित तो होते ही हैं, साथ ही उन्हें यह भी नज़र आने लगता है कि स्वतंत्रता आंदोलन का उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ है। वे यह भी देख पाते हैं कि जो लोग ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़े थे उनकी समस्याएं, 'स्वराज' के पचास साल बाद ज्यों की त्यों हैं।

पाठ्यक्रम की रैडिकल सम्भावनाएं इसीलिए सामने आ पाती हैं क्योंकि पाठ्य वस्तु और स्वयं के अनुभव के बीच एक संवाद बनाया गया है। बगैर किसी संदर्भ बिन्दु के लिखी गई पाठ्य पुस्तकों में तो जीवंत अनुभव के प्रति संवेदनशील हो पाना कठिन ही होता है। एन.सी.ई.आर.टी. या तमाम प्राइवेट प्रकाशकों या एस.सी.ई.आई.टी. द्वारा तैयार की गई पाठ्य पुस्तकों की जड़ें लोगों के बीच नहीं होतीं। वे एकदम बेगानी (अलग-थलग) होती हैं, जैसी कि इतिहासकारों से उम्मीद की जाती है। जब एकलव्य की किताबें पश्चिमी मध्यप्रदेश के क्षेत्रीय संदर्भ में तैयार की गईं, तो एन.सी.ई.आर.टी. के मित्र इसे एक छोटे-से ग्रामीण क्षेत्र के लिए किए गए एक अच्छे काम के रूप में देखते थे। उनका मत था कि इसका पूरे देश के इतिहास शिक्षण से कुछ लेना-देना नहीं है।

आगे चलकर लोक जुम्बिश ने राजस्थान के मिडिल स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम पैकेज तैयार करने हेतु एकलव्य को आमंत्रित किया। इसने हमें एक मौका दिया कि उसी तरह का पाठ्यक्रम पैकेज एक अलग संदर्भ के लिए विकसित करें। इस प्रयास का एक मतलब तो यह था कि हम राजस्थानी उदाहरणों (पुरातत्व स्थल, स्थानीय राजवंश) की तलाश करें। इसका एक अर्थ यह भी था कि हम भारत के सामाजिक इतिहास की अपनी धारणाओं में भी संशोधन करें। राजस्थानी लोक संस्कृति में विभिन्न तबकों के बीच सीमा रेखाओं के धुंधलेपन को शल मायाराम, डोमिनीक सिला खान व अन्य लोगों ने बखूबी उभारा है। इसने हमें धार्मिक इतिहास की अपनी संकल्पना को नए सिरे से विकसित करने को प्रेरित किया। लिहाज़ा हिन्दू धर्म व इस्लाम पर दो अध्यायों की बजाय हमने लोगों के धार्मिक जीवन पर एक अध्याय रखा।

राजस्थान में भाटों व कई स्थानीय इतिहासकारों ने इतिहास की लोक स्मृतियों को संजोकर रखा है। हमें ऐसे कई स्कूली शिक्षक मिले जिन्होंने अपने गांव व आसपास की बस्तियों के बसने से सम्बंधित मौखिक परम्परा को व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध करके रखा था। इनमें से अधिकांश का सम्बंध मध्ययुग के उत्तरार्ध व आधुनिक युग के पूर्वार्ध से था। हम इस सामग्री पर काम शुरू कर ही रहे थे कि तभी उतने ही मनमाने ढंग से राजस्थान सरकार ने लोक जुम्बिश का बिस्तर गोल कर दिया और एकलव्य से अनुबंध समाप्त कर दिया।

अंततः हम इस प्रमुख मुद्दे पर आ जाते हैं - राज्य, पेशेवर अकादमिक लोगों और सिविल सोसायटी संस्थाओं का परस्पर सम्बंध, खासकर पाठ्यक्रम निर्माण के संदर्भ में। एक ऐसा पाठ्यक्रम बनाने, जो लोगों को मात्र ज्ञान का ग्राहक नहीं बल्कि ज्ञान का सर्जक माने, में इन तीनों के बीच सहयोग ज़रूरी है। बदकिस्मती से इन तीनों को साथ लाने का संस्थागत ढांचा या प्रक्रियाएं हमारे पास नहीं हैं।

(स्रोत फीचर्स)